पारस परस

वर्ष-8 अंक-4 अक्टूबर-दिसम्बर, 2018, रजि. नं.:यू.पी. एच.आई.एन./2011/39939 पृष्ठ -40 मूल्य- 25

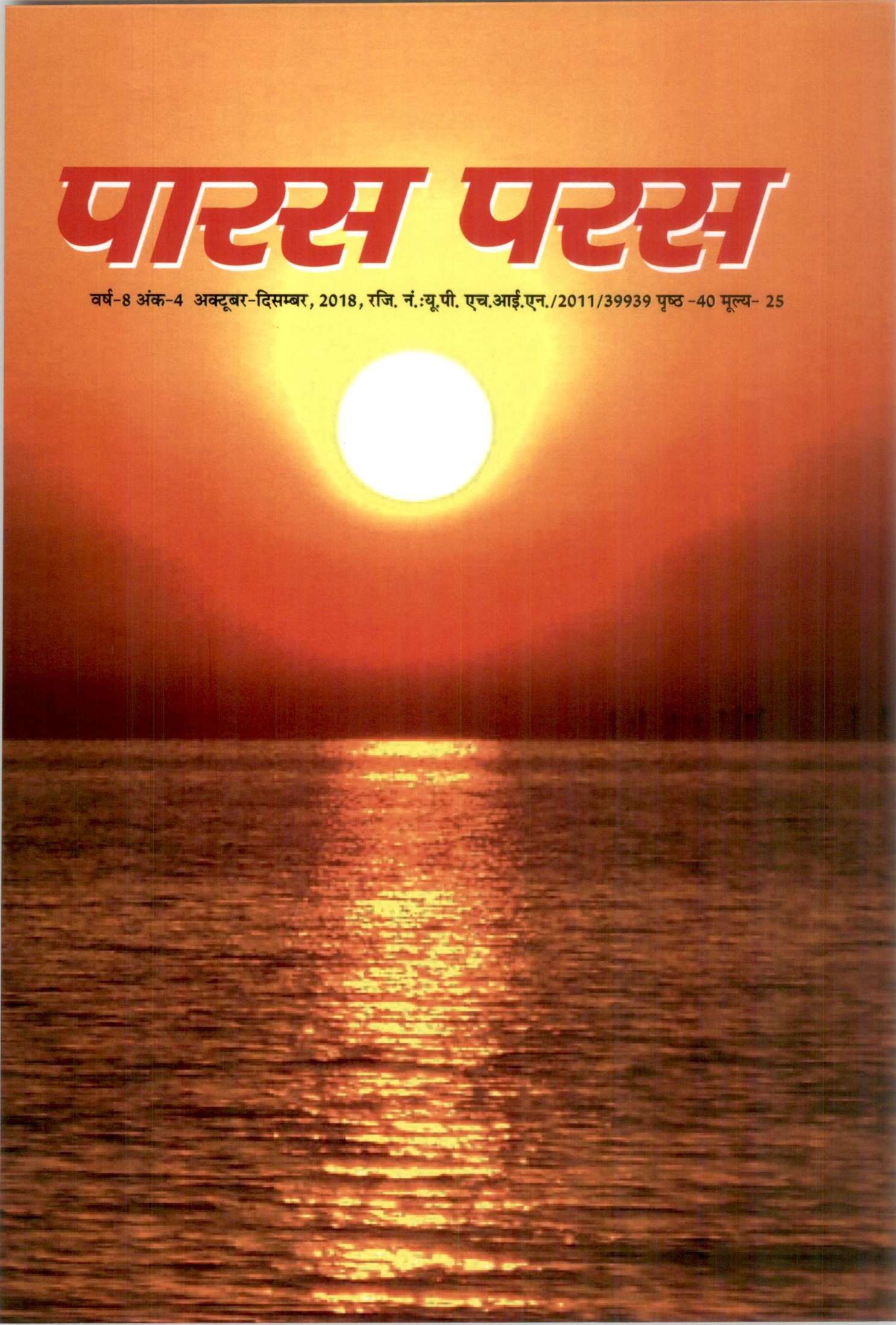

सृजन स्मरण

प्रभाकर माचवे

जन्म- 26 दिसम्बर 1917, निधन- 17 जून 1991

प्रेम क्या किसी मृदूष्ण स्पर्श का भिखारी?
प्रेम वो प्रपात
गीत दिवारात
गा रहा अशान्त
प्रेम आत्म–विस्मृत पर लक्ष्य–च्युत शिकारी।
प्रेम वह प्रसन्न
खेत में निरन्न
दुर्भिक्षावसन्न
सृजक कृषक खड़ा दीन अन्नाधिकारी।

वर्ष : 8 अंक : 4 अक्टूबर-दिसम्बर, 2018 रजि. नं. : यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस परस

हिन्दी काव्य की विविध विधाओं
की त्रैमासिक पत्रिका

संरक्षक
डॉ. एल.पी. पाण्डेय

प्रधान संपादक
प्रो. सूर्यप्रसाद दीक्षित

संपादक
डॉ. अनिल कुमार

कार्यकारी संपादक
सुशील कुमार अवस्थी

संपादकीय कार्यालय
538 क/1324, शिवलोक
त्रिवेणी नगर तृतीय, लखनऊ
मो. 9935930783
Email: paarasparas.lucknow@gmail.com

लेआउट एवं टाइप सेटिंग
अभ्युदय प्रकाशन
लखनऊ

स्वामी प्रकाशक मुद्रक एवं संपादक डॉ. अनिल कुमार द्वारा प्रकाश पैकेजर्स, 257, गोलागंज, लखनऊ उ.प्र. से मुद्रित तथा ए-1/15 रश्मि, खण्ड, शारदा नगर योजना, लखनऊ उ.प्र. से प्रकाशित।
सम्पादकः डॉ. अनिल कुमार

पारस परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है। पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
श्रद्धा सुमन		
आखिर ऐसा वादा क्यूँ	डॉ. अनिल कुमार पाठक	4
कालजयी		
किसान	पं. पारस नाथ पाठक 'प्रसून'	5
बादल बरसै मूसलाधार	प्रभाकर माचवे	6
पहली बूँद	ठाकुर प्रसाद सिंह	7
रूप के बादल	गोपीकृष्ण गोपेश	8
समय के साथी		
जीवन के लक्ष्य	डा. बैजनाथ सिंह	9
सर झुकाओगे तो पत्थर	बशीर बद्र	10
इतना प्यार न देना मुझको	मधुर शास्त्री	11
मैं चला हूँ	नन्द कुमार मनोचा 'वारिज'	12
शिशिर	अशोक कुमार पाण्डेय 'अशोक'	13
धन्य तुम मुझको करोगी	पं.शिवशंकर मिश्र	14
पुरानी बात	प्रेम चन्द्र सैनी	15
कलरव		
चाँद का कुर्ता	रामधारी सिंह दिनकर	16
मुन्नी-मुन्नी	द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी	17
दल बदलू हवाएँ	सीताराम गुप्त	18
ओ री चिड़िया	कृष्ण शलभ	19
नारी स्वर		
फूल-तीन तरह के	डा. नालिनी पुरोहित	20
मेरी मां	सत्याशर्मा कीर्तिक	21
प्यार का मौसम	इन्दिरा मोहन	22
याचना	तारा देवी पाण्डेय	23
सात भाइयों के बीच चम्पा	कात्यायनी	24
रिश्ता	अनामिका	25
कवि	अपर्णा भटनागर	26
नवोदित रचनाकार		
यादों के जंगल में	अनन्त आलोक	27
त्योति-शिखा	पूनम मनु	28
ओ शिखर पुरूष	अंजू शर्मा	29
अब खून नहीं डर बह रहा है	उमाशंकर चौधरी	30
मंजिल-दर-मंजिल	अमरनाथ श्रीवास्तव	31
भोगूँ मैं वे दुख सभी	कुमार सौरभ	32
तपन न होती	अभिज्ञात	33
मेघ गरजा रात भर है	अमरेन्द्र	34
पत्थर	सुशान्त सुप्रिय	35
हाथ	नील कमल	36
महान नायक	बद्रीनारायण	37
अभिनय	हरिओम राजोरिया	38
जीवन की सच्चाई है	कमलेश द्विवेदी	39
ध्यान रहे	विनय मिश्र	40

कालजयी महात्मा

गाँधी जी की 150वीं जयंती की तैयारियाँ विभिन्न स्तरों पर जोर–शोर से चल रही हैं। इस संबंध में सरकारी व गैर सरकारी विभिन्न आयोजन भी प्रारंभ हो गये हैं तथा पूरे वर्ष चलते रहेंगे। वैसे तो गाँधी जी सदैव चर्चा में रहे हैं। उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व को लेकर विभिन्न व्यक्तियों, समूहों द्वारा अपेक्षित व अनपेक्षित टिप्पणियाँ की जाती रही हैं। कभी उन्हें देश के विभाजन के लिए उत्तरदायी बताया जाता है, कभी देश की विभिन्न समस्याओं के लिए जिम्मेदार ठहराया जाता है, कभी उन्हें समकालीन विभिन्न सामाजिक एवं राजनीतिक व्यक्तियों के सम्बन्ध में पक्षपाती होने का भी आरोप लगाया जाता है। इस तरह की तमाम बातों से उनके व्यक्तित्व को सीमित एवं संकुचित करने का प्रयास किया जाता रहा है। इन आलोचको में ऐसे भी व्यक्ति व समूह शामिल हैं जिनका न तो देश की सांस्कृतिक विरासत में कोई योगदान रहा है और न ही देश के स्वतंत्रता आन्दोलन में ही उनकी कोई भूमिका रही है। ऐसे लोग उस बादल के समान हैं जो सूर्य को आवरित करने का प्रयास करते हैं और उन्हें यह गलतफहमी हो जाती है कि सूर्य पर उनका आवरण अनन्तकाल तक के लिए रहेगा। उन्हें यह बोध नहीं है कि बादलों में वह शक्ति व क्षमता नहीं है जो सूर्य के तेज को बहुत समय तक रोक सके।

प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर कुछ न कुछ कमियाँ होती हैं लेकिन महान् व्यक्ति वह होता है जो अपनी कमियों को जानता–पहचानता है और उनके प्रति उसकी आत्मस्वीकारोक्ति होती है। वह शनैः शनैः इन कमियों को दूर करने का प्रयास करता है। गाँधी जी ने अपने अन्दर की किसी कमी को कभी नहीं छिपाया बल्कि उसे स्वीकार किया और अपने कार्य–व्यवहार से उन्हें सुधारने तथा उन पर विजय पाने का प्रयास किया। गाँधी जी के आचरण, व्यवहार और कार्यपद्धति की यही विशेषता है और इसलिए इसकी जितनी चर्चा उनके जीवनकाल में हुई उससे अधिक आज हो रही है। गाँधी जी ने भारतीय संस्कृति की उस परम्परा को आत्मसात किया जो सदैव अहिंसा, प्रेम, करूणा, अस्तेय, अपरिग्रह आदि पर आधारित रही है। उनकी सबसे बड़ी विशेषता प्रत्येक मानव पर विश्वास करने की भावना है। यद्यपि लोगों ने इस भावना का कभी–कभी सम्मान नहीं किया और उनके प्रति अपने मन के अन्दर कुटिल भावना रखी, फलस्वरूप उन्हें जगह–जगह धोखा भी खाना पड़ा और इसी कारण कतिपय व्यक्तियों और समूहों द्वारा उनके नेतृत्व पर संदेह भी किया गया लेकिन इसके बावजूद उन्होंने मानव की गरिमा को सदैव महत्ता दी और मानवतावादी विचारधारा को मनसा– वाचा–कर्मणा अपनाया।

गाँधी जी पर शोध के दौरान मुझे तत्समय उपलब्ध उनके सम्पूर्ण वाड्.मय का अध्ययन करने का अवसर प्राप्त हुआ, साथ ही भारतवर्ष में उनके विभिन्न कार्यस्थलों

विशेषकर साबरमती आश्रम, वर्धा तथा पूना आदि भ्रमण करने का भी अवसर मिला। इसके अतिरिक्त गाँधी जी पर लिखे गये भारतीय एवं विदेशी लेखकों के विभिन्न ग्रन्थों के अध्ययन का अवसर मिला जिसमें गाँधी जी के व्यक्तित्व की अनेक उल्लेखनीय घटनाओं का सन्दर्भ देते हुए उनके व्यक्तित्व का समग्र वर्णन करने का प्रयास किया गया है। इन सबके अध्ययन के बाद मैं अपनी ओर से गाँधी जी के व्यक्तित्व के एक महत्वपूर्ण बिन्दु की चर्चा करना चाहता हूँ।

विश्व के विभिन्न देशों की आजादी के संघर्षों का तथा विभिन्न क्रांतियों का नेतृत्व करने वाले शीर्ष व्यक्ति कालांतर में उस देश अथवा राष्ट्र के स्वतंत्र होने पर या क्रांति के सफल होने पर वहाँ के प्रधान यानि राष्ट्रपति, प्रधानमंत्री आदि बने किन्तु गाँधी जी देश की आजादी में अग्रणी भूमिका निभाने के बाद भी ऐसे किसी भी पद से दूर रहे। यह एक सामान्य घटना नहीं है बल्कि पूरे विश्व–इतिहास का एक दुर्लभ उदाहरण है, जिसमें राम और भरत जैसे व्यक्तित्व की झलक मिलती है जिन्होंने राजपद पाकर भी उसका त्याग कर दिया था। यह गाँधी जी के अनुपम व्यक्तित्व का ही प्रभाव था कि उनके कई अनुयायी भी उनके पदचिन्हों पर चलते रहे और अवसर होते हुए भी कभी पद धारण नहीं किया। इसी सन्दर्भ में उनके परमानुयायी श्री जय प्रकाश नारायण की चर्चा करना प्रासांगिक है जिन्होंने लोकतंत्र के लिए संघर्ष में विजय के बाद भी पद धारण नहीं किया था।

आज ऐसे कालजयी युगपुरूष की 150वीं जयंती–वर्ष के अवसर पर हम 'पारस परस' परिवार की तरफ से उनका पुण्य स्मरण करते हैं। हमें यह पूर्ण विश्वास है कि गाँधी तथा गाँधी की विचारधारा सदैव जीवित रहेगी और सभी को सन्मार्ग पर चलने की प्रेरण देती रहेगी।

यह अंक आप के हाथों में सौंपते हुये अत्यंत प्रसन्नता हो रही है। इस अंक में जिन भी रचनाकारों की रचनाएं ली गयी हैं उनके तथा उनके परिवार, प्रकाशक आदि के प्रति हृदय से आभार प्रकट करते हैं और आशा करते हैं कि भविष्य में आप सभी का सहयोग मिलता रहेगा।

शुभकामनाओं के साथ,

डॉ0 (अनिल कुमार)

आखिर ऐसा वादा क्यूँ

-डॉ. अनिल कुमार पाठक

आपा–धापी इस जीवन की,
संघर्षों का वह जीवन–पथ।
कोई शिकवा–गिला नहीं,
हो गये भले पथ में लथपथ।
मंजिल निकट आ गई थी
फिर साथ रहा यह आधा क्यूँ?
आखिर ऐसा वादा क्यूँ?

ढूँढ़ लिया दुःख में सुख को,
कष्टों में बिना ही घबराये।
सोये सूखे पेट कभी, तो
सूखी रोटी भी खाये।
जब आई सुख की बेला तो,
बदला नेक इरादा क्यूँ?
आखिर ऐसा वादा क्यूँ?

सबकी उन्नति की खातिर,वे–
निशि–दिन रहते थे तत्पर।
करुणासागर, दयासिंधु वे,
हर संकट के थे, उत्तर।
साथ तुम्हारा मिला मगर,
असहाय बना यह प्यादा क्यूँ?
आखिर ऐसा वादा क्यूँ?

आशीर्वाद तुम्हारा पाकरके,
काँटों में भी फूल खिले।
केवल यह ही श्रेयस्कर,
जिन राहों पर तुम सदा चले।
उन राहों पर चलने का,
संकल्प रहे अब आधा क्यूँ?
आखिर ऐसा वादा क्यूँ?

❖❖❖

किसान

पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

ये भूखे जर्जर किसान,
बर्बर मानवता के निशान।
खेतों पर मेहनत करते,
कड़ी धूप में जलते।
अपनी बहती स्वेद बूँद से,
खेतों का मृदु सिंचन करते।
केवल दो दाने को–
या धनपतियों की भूख मिटाने को।
पर बदले में यही त्याग,
बर्बर मानव का यही राग

खूनों से होने दो आज फाग।
इनके बच्चों का यही साज,
इनके जीवन का यही राज।
'मरने दो भूखों उसे आज,
निर्धन का मिलता यही ब्याज।
कैसा होता जीवन का वैभव–विलास,
महलों में कैसा होता हुलास।
ये अब तक जान न पाये,
केवल गम ही पाये।

❖❖❖

बादल बरसै मूसलधार

प्रभाकर माचवे

बादल बरसै मूसलधार।
चरवाहा आमों के नीचे खड़ा किसी को रहा पुकार,
एक रस जीवन पावस अपरम्पार।
मेघों का उस क्षितिजकूल तक पता न पाऊँ–
कि कैसा घुलमिल है संसार।
–एक धुन्ध है प्यार ...

बहना है,
यह सुख कहना क्या।
उठना–गिरना लहर–दोल पर,
हिय की घुण्डी मुक्त खोल कर।
पर उस दूर किसी नीलम–घाटी से यह क्या बारम्बार ।
चमक–चमक उठता है ?
बिम्बित आँखों में अभिसार ।

आज दूर के सम्मोहन ने यात्रामय कर डाला,
बिखर गया वह संचित सुधि–धन जो युग–युग से पाला ।
पर यह निराकार आदहार
कहाँ से सीटी बजा रहा है
बुला रहा है, पर बेकार –
यहाँ से छुट्टी रजा कहाँ है ?
गैयाँ चरती हैं उस पार।
दूर धबीले चिह्न–मात्र हैं
जमना लहरें तज बन्ध –
बादल बरसै मूसलधार।

❖❖❖

पहली बूँद

ठाकुर प्रसाद सिंह

यह बादल की पहली बूँद कि यह वर्षा का पहला चुम्बन,
स्मृतियों के शीतल झोकों में झुककर काँप उठा मेरा मन।

बरगद की गम्भीर बाँहों से बादल आ आँगन पर छाये,
झाँक रहा जिनसे मटमैला थका चाँद पत्तियाँ हटाये।
नीची–ऊँची खपरैलों के पार शान्त वन की गलियों में,
रह–रह कर लाचार पपीहा थकन घोल देता है उन्मन।
यह वर्षा का पहला चुम्बन।

पिछवारे की बँसवारी में फँसा हवा का हलका अंचल,
खिंच–खिंच पड़ते बाँस कि रह–रह बज–बज उठते पत्ते चंचल,
चरनी पर बाँधे बैलों की तड़पन बन घण्टियाँ बज रहीं,
यह उमस से भरी रात यह हाँफ रहा छोटा–सा आँगन।
यह वर्षा का पहला चुम्बन।

इसी समय चीरता तमस की लहरें छाया धुँधला कुहरा,
यह वर्षा का प्रथम स्वप्न धँस गया थकन में मन की, गहरा,
गहन घनों की भरी भीड़ मन में खुल गये मृदंगों के स्वर,
एक रुपहली बूँद छा गई बन मन पर सतरंगा स्पन्दन।
यह वर्षा का पहला चुम्बन।

❖❖❖

रूप के बादल

गोपीकृष्ण गोपेश

रूप के बादल यहाँ बरसे–
कि यह मन हो गया गीला।

चाँद– बदली में छिपा तो बहुत भाया,
ज्यों किसी को–
फिर किसी का ख़याल आया।
और
पेड़ों की सघन–छाया हुई काली,
और कोई साँस काँपी, प्यार के डर से।
रूप के बादल यहाँ बरसे...।

सामने का ताल
जैसे खो गया है,
दर्द को यह क्या अचानक हो गया है?
विहग ने आवाज दी जैसे किसी को–
कौन गुजरा
प्राण की सूनी डगर से।
रूप के बादल यहाँ बरसे...।

दूर, ओ तुम!
दूर क्यों हो, पास आओ,
और ऐसे में जरा धीरज बंधाओ
घोल दो मेरे स्वरों में कुछ नवल स्वर,
आज क्यों यह कण्ठ,
क्यों यह गीत तरसे।
रूप के बादल यहाँ बरसे...।

❖❖❖

जीवन के लक्ष्य

डा. बैजनाथ सिंह

कुछ आँसू हम पोंछ सकें या–
प्रेरित कुछ मुस्कान करें।
प्रतिदिन सुखद बनावें सपना,
दुःखियों का संताप हरें।

किसी गिरे को उठा सकें हम,
संशय मन का भगा सकें हम।
सच्ची श्रद्धा जगा सकें हम,
उन्नति का पथ दिखा सकें हम।

जीवन में नित श्रम का बल हो,
ज्ञान कर्म का चिर सम्बल हो।
जीवन अपना सहज सरल हो,
दुःख–सुख में समता निर्मल हो।

मानव के, प्रभु के प्रति सच्चे,
सभी प्राणियों को हों अच्छे।
ये जीवन के लक्ष्य मनोहर,
जिसमें भरें चेतना के स्वर।

❖❖❖

सर झुकओगे तो पत्थर

बशीर बद्र

सर झुकाओगे तो पत्थर देवता हो जायेगा ।
इतना मत चाहो उसे, वो बेवफा हो जायेगा ।

हम भी दरिया हैं, हमें अपना हुनर मालूम है,
जिस तरफ भी चल पड़ेंगे, रास्ता हो जायेगा ।

कितनी सच्चाई से, मुझसे जिंदगी ने कह दिया,
तू नहीं मेरा तो कोई, दूसरा हो जायेगा ।

मैं ख़ुदा का नाम लेकर, पी रहा हूँ दोस्तो,
जहर भी इसमें अगर होगा, दवा हो जायेगा ।

सब उसी के हैं, हवा, ख़ुशबू, जमीनो–आस्माँ,
मैं जहाँ भी जाऊँगा, उसको पता हो जायेगा ।

रूठ जाना तो मोहब्बत की अलामत है मगर.
क्या खबर थी मुझसे वो इतना खफा हो जायेगा.

❖❖❖

इतना प्यार न देना मुझको

मधुर शास्त्री

इतना प्यार न देना मुझको दुःख के बोल न मैं सुन पाऊँ।

यों मेरे जीवन उपवन में,
श्वाँस तुम्हारी ही बहती है।
मेरे गीतों के गुंजन में,
गूँज तुम्हारी ही रहती है।
इतनी मधुर बहार न देना झरते फूल न मैं चुन पाऊँ।

यों मेरी अन्तर साधों को,
एक तुम्हारा ही संबल है।
प्राण तुम्हारी नयन ज्योति से,
मेरा जीवन पथ उज्ज्वल है।
इतना अधिक प्रकाश न देना तुम में पन्थ न मैं लख पाऊँ।

यों नयनों में स्वप्न तुम्हारी,
जीवन आभा का दर्पण है,
युग–युग के संचित आँसू से,
खोया प्यार तुम्हें अर्पण है।
लेकिन इतने साथ न रहना तुम बिन पाँव न मैं रख पाऊँ।

❖❖❖

मैं चला हूँ

नन्द कुमार मनोचा 'वारिज'

मैं चला हूँ छोड़ कर पीछे हजारों काफिले,
क्योंकि तुम ने साँझ ढलते जब पुकारा दूर से।
आग मन में मैं छिपाये,
मौन पथ पर चल रहा हूँ।
चरण चिन्हों पर तुम्हारे,
कदम रख कर चल रहा हूँ।
अब न संभव लौट जाना आज तेरे द्वार से।
क्योंकि मर कर मिट गये सब रास्ते के काफिले–

मैं चला हूँ छोड़ कर पीछे हजारों काफिले।
क्योंकि तुम ने साँझ ढलते जब पुकारा दूर से।
अब न बहकाओ मुझे तुम,
मैं तुम्हारा गीत ही हूँ।
आज नयनासव पिलाओ,
मैं तुम्हारा मीत ही हूँ।
आ गया हूँ तोड़ कर बंधन सभी मैं जगत के,
क्योंकि तुम से नयन प्यासे फिर अचानक आ मिले।

मैं चला हूँ छोड़ कर पीछे हजारों काफिले,
क्योंकि तुम ने सांझ ढलते जब पुकारा दूर से।

❖❖❖

शिशिर

अशोक कुमार पाण्डेय 'अशोक'

तप्त करते जो धरती को रम्य–रश्मियों से,
वे ही दिनराज प्रात तपता लगाये हैं।
आहत तुषार मार से है जलजात किन्तु,
व्यथित मिलिन्द्र–व्यूह अंक में छिपाये हैं।
ओढ़ते निकुंज, वन, बाग कोहरे का पट,
जगे उर–भाव देख के जो घन छाये हैं।
शिशिर–प्रहार से बचाव हेतु मानो मेघ,
रजनी नवेली की रजाई बन आये हैं।

इतना कुहासा घना छाया रहता है सदा,
दिखता न किंचित भी कब प्रात होता है।
घूँघट उठाते ही दिवाकर के जाने कब,
लाज लालिमा से लाल उषा–गात होता है।
ढाँपता कलेवर गगन घन–कम्बल से,
हिम से भी शीतल शिशिर वात होता है।
काँपते हैं संयम के आसन से योगी अब,
पंकजों के दल पे तुषार–पात होता है।

शिशिर प्रकोप में भी फओी चादर से,
काटते हैं रात, दिन, प्रात, बदली की शाम।
मुख है मलीन कृश गात रुग्णता से ग्रस्त,
बाहुबलियों ने हैं दबाये खेत–पात, धाम।
झुर्रियों में दीनता की मार के बरेते पड़े,
अब फुटपाथ ही बना है इनका मुकाम।
दृश्य देख लगता है होंगे दया–धाम किन्तु,
अब जो कदापि दीन–बन्धु न रहे हो राम।

❖❖❖

धन्य तुम मुझको करोगी

पं0 शिवशंकर मिश्र

धन्य तुम मुझको करोगी।
शीघ्र ही आकर।
मैं हुआ उपकृत सुखद यह,
सूचना पाकर।
है पता मुझको कथा इस आगमन की,
मिल गयी आभा मुझे करुणा किरण की।
लौट जाओगी मुझे कुछ
बात समझाकर।
धन्य तुम मुझको करोगी।।
हो गया अनुमान मेरी वेदना का है,
मूल में उसके कि जो इस प्रेरणा का है।
मुखर शायद कर गया
मैं गीत गा गा कर।
धन्य तुम मुझको करोगी।
पुण्य पावन श्रीचरण का है नमन मेरा,
छवि तुम्हारी ही सँजोये है सपन मेरा।
लग रहा पदचाप के अब
आ रहे हैं स्वर।
धन्य तुम मुझको करोगी।।
दो तटों के बीच में धारा प्रवाहित है,
युग–युगों की साध क्वाँरी अब विवाहित है,
राग बन कर गूँजते रहें
श्वाँस के मर्मर।
धन्य तुम मुझको करोगी।।

❖❖❖

एक सुबह की डायरी

कुमार अंबुज

वह अपनी धुन में किसी पक्षी के साथ नापता हुआ आकाश
उसकी आँखों में आसमान का रंग चमकता विस्तृत नीला
उसकी चाल को धरती का घर्षण जैसे रोकता–सा
काँच के टुकड़ों की आपसी रगड़ का रंगीन संगीत
उठता हुआ निक्कर की जेबों में से
गूँजता हुआ इस दिक् के सन्नाटे में
आँखों के आगे चाकलेट की पारदर्शी पन्नी लगाए
कूदता चलता वह करता खेल अनेक
दूध की लाइन में खड़े व्याकुल अधीर लोगों के बीच
वही था जो बेपरवाह था वह जो असीम था
और तैर रहा था अथाह बचपन की झील में
वही था जो आसपास को देखता हुआ इस तरह
मानो हर चीज पर उसका ही अधिकार
जो दूध वाले के मजाक पर देखता उसे क्षमा करता हुआ
थैली को निक्कर की दूसरी जेब में घुसाने के
एक बड़े नाट्य में व्यस्त
वह जो ट्रक की तेजी को परास्त करता
पार करता हुआ सड़क
गली के छोर पर दिखता चपल
एक कौंध
एक झोंका गायब होता हुआ हवाओं के साथ
वह जो इस पुरातन दुनिया को करता हुआ नवीन
और अद्यतन !
वह जो मेरे आज के दिन का प्रारंभ !

❖❖❖

चाँद का कुर्ता

राम धारी सिंह दिनकर

हठ कर बैठा चाँद एक दिन, माता से यह बोला,
"सिलवा दो माँ मुझे ऊन का मोटा एक झिंगोला।

सनसन चलती हवा रात भर, जाड़े से मरता हूँ,
ठिठुर–ठिठुरकर किसी तरह यात्रा पूरी करता हूँ।

आसमान का सफर और यह मौसम है जाड़े का,
न हो अगर तो ला दो कुर्ता ही कोई भाड़े का।

बच्चे की सुन बात कहा माता ने, "अरे सलोने!
कुशल करें भगवान, लगें मत तुझको जादू–टोने।

जाड़े की तो बात ठीक है, पर मैं तो डरती हूँ,
एक नाप में कभी नहीं तुझको देखा करती हूँ।

कभी एक अंगुल भर चौड़ा, कभी एक फुट मोटा,
बड़ा किसी दिन हो जाता है, और किसी दिन छोटा।

घटता–बढ़ता रोज किसी दिन ऐसा भी करता है,
नहीं किसी की भी आँखों को दिखलाई पड़ता है।

अब तू ही ये बता, नाप तेरा किस रोज लिवाएँ,
सी दें एक झिंगोला जो हर रोज बदन में आए?"

❖❖❖

मुन्नी-मुन्नी

द्वारिका प्रसाद माहेश्वरी

मुन्नी–मुन्नी ओढ़े चुन्नी, गुड़िया खूब सजाई
किस गुड्डे के साथ हुई तय इसकी आज सगाई
मुन्नी–मुन्नी ओढ़े चुन्नी, कौन खुशी की बात है,
आज तुम्हारी गुड़िया प्यारी की क्या चढ़ी बरात है?
मुन्नी–मुन्नी ओढ़े चुन्नी, गुड़िया गले लगाये,
आँखों से यों आँसू ये क्यों रह–रह बह–बह जाये!
मुन्नी–मुन्नी ओढ़े चुन्नी, क्यों ऐसा यह हाल है,
आज तुम्हारी गुड़िया प्यारी जाती क्या ससुराल है?

भालू आया

लाठी लेकर भालू आया,
छम–छम छम–छम छम–छम।
डुग–डुग डुग–डुग बजी डुगडुगी,
डम–डम डम–डम डम–डम–डम।
ढोल बजाता मेढक आया,
ढम–ढम ढम–ढम ढम–ढम–ढम।
मेढक ने ली मीठी तान,
और गधे ने गाया गान।

❖❖❖

दल बदलू हवाएं

सीताराम गुप्त

जो पहले लू बन चलती थीं,
वे अब बर्फीली कहलाएँ!
दल–बदलू हो गई हवाएँ!
सिर्फ हवा क्या, मौसम ने ही
अब तो ऐसा मोड़ लिया है,
दादी जी ने फिर निकालकर
गरम दुशाला ओढ़ लिया है!
सूरज ढलते ही मन कहता–
चल रजाइयों में छिप जायें,
कथा–कहानी सुनें, सुनायें।

सूरज की नन्हीं–सी बिटिया–
धूप सुबह की चंचल लड़की,
द्वार–द्वार किलकारी भरती,
झाँक रही है खिड़की–खिड़की।
बिस्तर छोड़ो, बाहर आओ,
चलो धूप से हाथ मिलायें
कर तैयारी शाला जायें।

❖❖❖

ओ री चिड़िया

कृष्ण शलभ

जहाँ कहूँ मैं बोल बता दे,
क्या जायेगी, ओ री चिड़िया।
उड़ करके क्या चन्दा के घर–
हो आयेगी, ओ री चिड़िया।

चन्दा मामा के घर जाना,
वहाँ पूछ कर इतना आना।
आ करके सच–सच बतलाना,
कब होगा धरती पर आना।
कब जायेगी, बोल लौट कर,
कब आयेगी, ओ री चिड़िया।
उड़ करके क्या चन्दा के घर,
हो आयेगी, ओ री चिड़िया।

पास देख सूरज के जाना,
जा कर कुछ थोड़ा सुस्ताना।
दुबकी रहती धूप रात–भर,
कहाँ? पूछना, मत घबराना।
सूरज से किरणों का बटुआ,
कब लायेगी, ओ री चिड़िया।
उड़ करके क्या चन्दा के घर,
हो आयेगी, ओ री चिड़िया।

चुन–चुन–चुन–चुन गाते गाना,
पास बादलों के हो आना।
हाँ, इतना पानी ले आना,
उग जाये खेतों में दाना।
उगा न दाना, बोल बता फिर,
क्या खायेगी, ओ री चिड़िया।
उड़ करके क्या चन्दा के घर,
हो आयेगी, ओ री चिड़िया।

❖❖❖

फूल-तीन तरह के

डॉ. नालिनी पुरोहित

प्रेम के फूल–
खिलते जाते हैं,
जाने–अनजाने सुगंध
पसारते जाते हैं।

समझौता के फूल–
खिलते भी नहीं,
सूखते भी नहीं,
हवा के रुख से,
सुगंध पसारते जाते हैं।

जुदाई के फूल–
खिलते ही रहते हैं,
यादों के रुख से,
सुगंध समेटने का–
प्रयास करते जाते हैं।

भाग्य

जिन्दगी की बेदाग
सीमाओं में
भाग्य विचरता रहता है।
सुख से मिल कर–सौभाग्य,
दुःख से मिल कर–दुर्भाग्य।
बनाते रहता है।
सुख पाने की लालसा में–
हम उससे मिलने नहीं देते।
और भाग्य
दुःख से मिलता रहता है।
सौभाग्य का मिश्रण
अनजाने ही कम होते जाता है।
और.....हम
भाग्य को कोसते रह जाते हैं।

❖❖❖

मेरी माँ

सत्या शर्मा कीर्तिक

आज अचानक जब कहा
मेरी माँ ने मुझसे
लिखो ना मेरे ऊपर भी कोई कविता
और फिर ध्यान से देखा मैंने माँ को आज कई दिनों बाद ।
अरे! चौंक सी गयी मैं
माँ कब बूढ़ी हो गयी ?
सौंदर्य से दमकता उनका
वो चेहरा जाने कब ढँक गया झुर्रियों से

माँ के सुंदर लम्बे काले बाल
कब हो गए सफेद
कब माँ के मजबूत कंधे
झुक से गए समय की बोझ से।

अचंभित हूँ मैं ...

ढूँढती रही मैं नदियों, पहाड़ों,
बगीचों में कविता और मेरी माँ
मेरे ही आँखों के सामने होते रही बूढ़ी।

भागती रही भावों की खोज में
खोजती रही संवेदनाएँ
पर देख नहीं पाई जब
प्रकृति खींच रही थी
माँ के जिस्म पर अनेकों रेखाएं ..

सिकुड़ती जा रही थी माँ
तन से और मन से
और मैं ढूंढ रही थी प्रकृति में
अपनी लेखनी के लिए शब्द ।

जब बूढी आँखे और थरथराते हाथों से
जाने कितनी आशीषें लुटा रही थी माँ ।
तब मैं दूसरों के मनोभावों में ढूंढ रही थी कविता ।

और इसी बीच जाने कब मेरे और मेरी कविता के बीच बूढी हो गयी माँ ।

❖❖❖

प्यार का मौसम

इन्दिरा मोहन

फागुन की आहट है
पायलिया खोल नहीं,
ढोलक ही थापों पर गाने का मौसम है।

वासंती झोंकों संग फूल खिल–खिलाते,
हरे–भरे, वन–उपवन, आँगन हरसाये,

आँचल से उलझ रही
नथनी का मोल नहीं
आम तले हँसने–हँसाने का मौसम है।

गाँठ लगे उलाहने मानस बिखरे,
कंगन की रुन–झुन सुन देहरी को टेरे।

अनबोले रिश्तों को
बोलों से तोल नहीं,
नेह भरे नयन से रिझाने का मौसम है।

तारों के बीच बसी प्रेम–पगी रातें,
चंदा ने सुन ली सब, छिप–छिपकर बातें।

प्राणों के बन्धन से
कुछ भी अनमोल नहीं।
अधरों पर सौगातें देने का मौसम है।।

❖❖❖

याचना

तारादेवी पांडेय

खड़ी भिखारिन कब से द्वार!
माँग रही है सुखमय प्यारय
टूटा–फूटा मन का खप्पर,
हाथों में लेकर आयी।

दे दो मुझको वह अमूल्य–धन
बड़ी आस लेकर आयी,
आज बहा दो मधुमय धारय
लेने आयी केवल प्यार।

जिसे देखकर हँसे चन्द्रमा–
ऐसा प्यार न मैं लूँगी,
घटता–बढ़ता देख उसे प्रभु,
कैसे जीवन रख लूँगी।

तारों–सा झिलमिल संसारय
मुझे चाहिए ऐसा प्यार।
कहीं पहेली–सा रहस्यमय–
बना न देना जीवन–सारय

पूर्ण स्वच्छ हो और निष्कपट,
देव! हमारा भोला प्यारय
बिना प्रेम के जीवन भार,
दे दो, दे दो अपना प्यार।

❖❖❖

सात भाइयों के बीच चम्पा

कात्यायनी

सात भाइयों के बीच
चम्पा सयानी हुई।

बाँस की टहनी–सी लचक वाली
बाप की छाती पर साँप–सी लोटती
सपनों में काली छाया–सी डोलती
सात भाइयों के बीच
चम्पा सयानी हुई।

ओखल में धान के साथ
कूट दी गई
भूसी के साथ कूड़े पर
फेंक दी गई
वहाँ अमरबेल बन कर उगी।

झरबेरी के साथ कँटीली झाड़ों के बीच
चम्पा अमरबेल बन सयानी हुई
फिर से घर में आ धमकी।

सात भाइयों के बीच सयानी चम्पा
एक दिन घर की छत से
लटकती पाई गई
तालाब में जलकुम्भी के जालों के बीच
दबा दी गई
वहाँ एक नीलकमल उग आया।

जलकुम्भी के जालों से ऊपर उठकर
चम्पा फिर घर आ गई
देवता पर चढ़ाई गई
मुरझाने पर मसल कर फेंक दी गई,
जलायी गई
उसकी राख बिखेर दी गई
पूरे गाँव में।

रात को बारिश हुई झमड़कर।

अगले ही दिन
हर दरवाजे के बाहर
नागफनी के बीहड़ घेरों के बीच
निर्भय–निस्संग चम्पा
मुस्कुराती पाई गई।

❖❖❖

रिश्ता

अनामिका

वह बिल्कुल अनजान थी!
मेरा उससे रिश्ता बस इतना था
कि हम एक पंसारी के गाहक थे
नए मुहल्ले में!
वह मेरे पहले से बैठी थी–
टॉफी के मर्तबान से टिककर
स्टूल के राजसिंहासन पर!
मुझसे भी ज़्यादा
थकी दिखती थी वह
फिर भी वह हंसी!
उस हँसी का न तर्क था,
न व्याकरण,
न सूत्र,
न अभिप्राय!
वह ब्रह्म की हँसी थी।
उसने फिर हाथ भी बढ़ाया,
और मेरी शॉल का सिरा उठाकर
उसके सूत किए सीधे
जो बस की किसी कील से लगकर
भृकुटि की तरह सिकुड़ गए थे।
पल भर को लगा–उसके उन झुके कंधों से
मेरे भन्नाये हुए सिर का
बेहद पुराना है बहनापा।

❖❖❖

कवि

अपर्णा भटनागर

जब धूप जंग करती
अपने हौसले दिखाती है।
तो अक्सर छाँव का एक टुकड़ा
उसे मुस्कुरा कर देता हूँ–
और हथियार
छोड़ जाती है धूप–
इस कदर मेरे आँगन में–
कि सूरज सहम कर देखता है–
आकाश में कर्फ़्यू लगा है।
बिना पथराव के?
चाँद से बहस –
उसका संविधान लिखने की।
बिना प्रारूप
खींच लाता हूँ उसे
उन हाशियों में
जहाँ प्रश्न नहीं उत्तर लिखा है?
समय को
निब की नोक पर रख
न जाने कितने हल चलाता हूँ आखरों के।
कि दबी सभ्यताएँ कुनमुनाती,
अपने वैधव्य से बाहर
देखती हैं कनखियों से।
खोये ठाठ खंडहर पर
इतिहास का बिरवा लगा है?
क्यों जानते नहीं मुझे?
दंभ या सृजन?
प्रलय या विलय?
अस्ति या नास्ति?
मन को खंगालो
तुम्हारी संवेदनाओं की स्याही हूँ।
बोलो क्या लिखना बंद करूँ?

❖❖❖

यादों के जंगल में

अनन्त आलोक

कल रात भर
मैं तन्हा ही भटकता रहा
यादों के बियाबान जंगल में
जंगल भरा पड़ा था
खट्टी मीठी और कड़वी
यादों के पेड़ पौधों से

जंगल के बीचोंबीच उग आए थे
कुछ मीठे अनुभवों के विशालकाय दरख़्त
जो लदे पड़े थे मधुर एहसासों के फूलों–फलों से
बीच–बीच में उग आई थी
कड़वे प्रसंगों की तीखी काँटेदार झाड़ियाँ
जिनके पास से गुजरने पर
आज भी ताजा हो जाती है वो चुभन
और उछल पड़ता है दिल

मेरे एकदम सामने बैठी
जुगनुओं जड़ी चादर ओढ़े
मनमोहक, साँवली–सलोनी निशा
नींद की बोतल से भर भर
नैन कटोरे
पिलाती रही मुझे
रात रस

लेकिन मैं बहका नहीं
बढ़ता ही गया आगे
और आगे ।
जंगल में एक साथ
कईं दरख़्तों का सहारा ले
झुलती नन्हीं समृतियों की बेलें
पाँव से उलझ पड़ी अचानक
और मैं गिरते गिरते बचा !

जंगल ने पीछा नहीं छोड़ा मेरा
मैं भागना चाहता था
मैंने कईं बार छुपाया स्वयं को
रजाई में मगर जंगल था कि
उसके भी भीतर आ गया
उसने कैद करके रखा मुझे
सुबह होने तक ।

❖❖❖

सोने का कण

कैलाश पण्डा

भारत की मिट्टी में
सोने का कण है।
इस कान्तिमयी रज से
कौन अभिप्रेरित नहीं है।
कौन बैठा है
आँखें मूँद
अहा स्वर्णिम आभा में,
बैठा हूँ मैं।
मेरी आत्मा को
जागृत करने वाली,
तुम वंदनीया हो।
मेरे जन्म–जन्मातर के
पापों को नष्ट करने वाली,
तुम प्रसादमयी हो।
तुम्हारे प्रभाव से
अज्ञानता, फूहड़ता लुप्त हो जाती है।
तुम्हारे ज्ञानमयी संस्कारमयी पुंज से
अन्तस् की कालिख
सुनहले रूप को प्राप्त कर,
समस्त ग्रन्थियों को
खोलने में समर्थ होती है।
हे अमृतमयी
तुम ऋषियों की वाणी हो
तपस्वियों की तपस्या का
फल हो।
तुझ में कितने ही महापुरुष
बालक बन खेले है,
कितनों को सँवारा है तुमने
हे कल्याणी।
तुम मोक्षदायिनी हो,
अहा, इस धरती में
रत्नों के तन्तु हैं
अये पुण्यमयी माँ
मैं मिटना चाहता हूं तुझमें
खिलना चाहता हूं
और रोना बिलखाना भी चाहता हूं
तेरे आंचल में
जिसे खुला रखना सदैव
मेरे लिए।

❖❖❖

होली है होली

महेश प्रसाद पाण्डेय महेश

ब्रजवासियों के मन मोद भरा,
सब झूम के नाच औ गा रहे हैं।
हमजोलियों में घुलके–मिलके,
अति चाव से टोली बना रहे हैं।
पिचकारियाँ कंचन की कर ले, नव–
फागुन गीत सुना रहे हैं।
यह पर्व है होली का आज इसी से,
अबीर–गुलाल लगा रहे हैं।

मधुमास के आगम में दिखते,
सब लोग है हर्ष तरंग उछाल में।
लतिका को नया परिधान मिला,
हर रंग के फूल खिले तरु डाल में।
अति सुंदर बोलती कोकिला बोल,
भरा मकरंद का कोष रसाल में।
इस फागुन मास में राधिका क्या,
घनश्याम रंगे हुए लाल गुलाल में।

सबके कर में पिचकारियाँ दे,
संग टोली में होकर राधिका बोली।
अब आओ चलें हम गोकुल में,
भरके हर रंग अबीर की झोली।
बनते जो बड़े मनमोहन हैं,
सब भूल वे जायेगे आज ठिठोली।
लगा लाल गुलाल कहेंगे लला,
मत मानो बुरा यह होली है, होली।।

❖❖❖

नई राह पर

डा. मृदुल शर्मा

छोड़ पुरानी पगडण्डी को
निकल पड़े हैं नई राह–पर।।

सरोकार अब नहीं रह गया
कोई, नेकी और बदी से ।
श्वान खा रहा है कौशल की,
अंधा पीस रहा है, पीसे।

पहले तो थू–थू होती थी,
अब ताली बजती गुनाह पर।

बैठ साइबर–कैफे में हम,
जोड़ रहे दुनिया से नाता।
पर अपनी मिट्टी नहीं सुहाता।

निज–यात्रा की दिशा नियत कर ली
बटमारों की सलाह पर।

बदली–बदली हवा निगोड़ी,
चुरा रही चाँदनी फलक से।
उगले बने, न निगले बनता,
गुड़ का हँसिया, मृदुल' हलक से।

वक्त बतायेगा क्या पाया
पुरखों की पूँजी तबाह कर।

❖❖❖

प्रकृति अभिनन्दन

रवीन्द्र कुमार

करें, प्रकृति का हम अभिनन्दन।
नील गगन, श्यामला धरा की–
गौरवमयी कहानी है।
करें प्रकाशित जगत चन्द्र–रवि,
संध्या भोर सुहानी है।

अरुणोदय की अरुणिम आभा,
सबका मन हर लेती है।
तारक–मालाओं की सुषमा,
अति प्रसन्न कर देती है।

निशि–दिन करें प्रकृति का वन्दन।
करें प्रकृति का हम अभिनन्दन।

वनों, उपवनों की शोभा अति–
अनुपम छआ निराली है।
हरे भरे वृक्षों पौधों से–
धरती पर हरियाली है।

वृक्षों का कटाव हम रोकें,
वनीकरण अभियान करें।
कर वृक्षारोपण धरती पर,
वृक्षों का सम्मान करें।

बनें धरा जैसे वन नन्दन।
करें प्रकृति का हम अभिनन्दन।

❖❖❖

जिन्दगी

मुकेश 'नादान'

मेरे विचार से,
इस प्रकार से।
दर्द और फरियाद थी ,
बीते दिनों की याद थी।
मजबूरी और लाचारी थी,
बेबसी और बेकारी थी।
टूटती हुई आस की,
बैठती हुई साँस की।

एक तस्वीर है 'जिन्दगी'
जिसको बनाने में,
निभाने और सजाने में,
युग बीत जाते हैं।
फिर भी इंसान,
बेचारा नादान,
कुछ नहीं कर पाता है।
मुट्ठी बाँध के आता है,
और खाली ही जाता है।
इसी का नाम 'जिन्दगी'।

❖❖❖

अंधेरा मिटता नहीं है मिटाना पड़ता है

भारतभूषण पंत

अंधेरा मिटता नहीं है मिटाना पड़ता है
बुझे चराग को फिर से जलाना पड़ता है।

ये और बात है घबरा रहा है दिल वर्ना
गमों का बोझ तो सब को उठाना पड़ता है।

कभी कभी तो इन अश्कों की आबरू के लिए
न चाहते हुए भी मुस्कुराना पड़ता है।

अब अपनी बात को कहना बहुत ही मुश्किल है
हर एक बात को कितना घुमाना पड़ता है।

वगर्ना गुफ्तुगू करती नहीं ये ख़ामोशी
हर इक सदा को हमें चुप कराना पड़ता है।

अब अपने पास तो हम ख़ुद को भी नहीं मिलते
हमें भी ख़ुद से बहुत दूर जाना पड़ता है।

इक ऐसा वक्त भी आता है जिंदगी में कभी
जब अपने साए से पीछा छुड़ाना पड़ता है।

बस एक झूट कभी आइने से बोला था
अब अपने आप से चेहरा छुपाना पड़ता है।

हमारे हाल पे अब छोड़ दे हमें दुनिया
ये बार बार हमें क्यूँ बताना पड़ता है।

❖❖❖

ताज्जुब

हीरा लाल

मुझे देख कर यह ताज्जुब हुआ उनको,
जिन्दा हूँ मैं कैसे, क्यों मरा नहीं।

मर भी जाता गर किसी बहाने से, मैं,
गम मरने का उनको होता जरा नहीं।

झपट चुकी है मौत बाज सी कई बार,
मान कर किसी का साया, मैं डरा नहीं।

जिला रखा है जिसकी यादों ने मुझको,
वही पूछ रहा है, मैं क्यों मरा नहीं।

मर भी जाते उनकी ख्वाहिश के लिए,
पर क्या करें जख्मों से दिल भरा नहीं।

नहीं है, लाचारी में

कुछ फर्क नहीं पड़ा है कभी उसकी बेरुखी से,
गर्ज नहीं मगरूर को जायें, मनाने के लिए।

दर्द बढ़ता है तो बढ़ ले अब चाहे जितना भी,
कहेंगे नहीं उससे कभी यहाँ आने के लिए।

क्या–क्या नहीं गुजरी है, बेकस दिल पर मेरे,
मगर वह न आये कभी दिल को झाँकने के लिए।

हो जायेंगे संग दिल से बढ़कर तंग दिल वह कभी,
सोचते कैसे, बढ़े न हाथ, कुछ पाने के लिए।

जिद नहीं, फक्र से उठा है जो सर अब गैरत का,
नहीं है लाचारी में वह सर झुकाने के लिए।

❖❖❖

पत्थर

सुशान्त सुप्रिय

वह एक पत्थर था
रास्ते में पड़ा हुआ

सुबह जब मैं वहाँ से गुजरा
मैंने देखा --
कोई उसके दाईं ओर से
निकल कर जा रहा था
कोई बाईं ओर से

सारा दिन वह पत्थर
धूप में तपता हुआ
वैसे ही पड़ा रहा
शहर की उस व्यस्त सड़क पर

उसे भी इच्छा हुई कि
कोई तो उसे छुए
कोई तो उसे उठाए
जैसे छुआ जाता है
फूल को या
जैसे उठाया जाता है
मूर्तियों को
किंतु किसी ने उसे
ठोकर भी नहीं मारी

हालाँकि वह एक
बेहद गरम दिन था
किंतु शाम को जब मैं
उसी रास्ते से लौट रहा था
मैंने देखा
पत्थर में से कुछ
रिस रहा था पानी जैसा

हे देव
क्या ऐसा भी होता है
पत्थर भी रोता है ?

❖❖❖

सुख की अनुभूति

कृष्ण कुमार वर्मा

मन में जबसे बसे, उपजे मन भाव पुनीत नये,
मन की तब श्यामलता हर के, प्रिय श्याम तभी मन जीत गये।
मन से फिर दूर विकार हुए, घनश्याम तभी मन मीत भये,
तब श्याममयी जग जान पड़ा, दुख दारुण भी सब बीत गये।

जिसको सुख की कुछ चाह हुई, उसको कब चाह हुई धन की,
धन की जिसको कुछ चाह हुई, उसको सुधि ही न रही तन की।
तन की जिसको सुधि न रही, वह वृद्ध दुखी अथवा सनकी।
हरि के पद पंकज ध्यान बिना, न हुई अनुभूति सुखी मन की।

सुख साधन हेतु कभी मन में, जिसमें कुछ चाह न की धन की,
धन वैभव से रह दूर सदा, अखरी न कमी उसको धन की।
धन से कुछ तृप्ति मिली न उसे, सुधि ही न रही अपनेपन की,
तब ब्रम्हमयी जग जान पड़ा, सुखमय अनुभूति हुई मन की।

❖❖❖

''रे मनुज''

वीरपाल सिंह 'निक्छल'

रे मनुज मत रोक तू पथ, पथिक को उल्लास दे, दे।
पथिक से अनभिज्ञ है तू, क्षणिक लोचन ही मिले हैं,
हाथ में खंजर लिया क्यों कौन से शिकवे मिले हैं।
है निवेदन मधुर तुझसे, पथिक को विश्वास दे दे।
रे मनुज मत उल्लास दे, दे!

पथिक है भाँति तेरी, जा रहा वह किस दिशा में,
नहीं पथिक का पथ सुगम कुछ, चल न पायेगा निशा में।
हो अगर सम्भव तिमिर में, अल्प मात्र प्रकाश दे दे।
रे मनुज मत उल्लास दे, दे !

कल रहा वह आज भी है, कल रहेगा क्या भरोसा,
आह आती है अधर तक, क्षुब्ध हृदय ने है कोसा,
कंटकों को मत बिछा तू, हो सके नव आस दे दे।
रे मनुज मत उल्लास दे, दे !

मनुज का है धर्म सुन ले, जीव जन के काम आये,
किन्तु तेरी उग्रता से नेत्र आँसू छलछलाए,
कर न तू वध इस विजन में, हास या परिहास दे दे।
रे मनुज मत उल्लास दे, दे !

❖❖❖

अभिनय

हरिओम राजोरिया

अपनी तरह से नहीं
उनकी तरह से करना था अभिनय
वही थे नियन्ता
हमें तो करते चले जाना था अनुसरण
संकेतों से समझने थे निहितार्थ
संकेतों से करनी थी एक झूठ की निष्पत्ति

अन्धकार से भागना था
प्रकाश वृत्तों की ओर
बोलते–बोलते वहाँ से?
लौट आना था अन्धकार में
कहा जाता चार कदम चलने को
तो चलना था चार ही क़दम
बोलना था
बोलकर ठिठक जाना था
ठिठककर
फिर चले जाना था नेपथ्य में
कभी मारना था जोर से ठहाका
कभी रोना था बुक्का फाड़कर
कुछ भूमिकाओं में तो
चुप ही रहना था पूरे वक़्त

इस तरह की भी थी एक भूमिका
कि एकाएक मनुष्य से
तब्दील हो जाना था एक घोड़े में
घोड़े से फिर एक व्यापारी में
व्यापारी से फिर एक निरीह ख़रीदार में
यही थी अभिनय की नियति
जीवन ही था एक नाटक का होना
जहाँ अन्ततः
तब्दील होना था हमें एक ग्राहक में।

❖❖❖

पार जाने का हक है

गिरीश पाण्डेय

हर एक जीव को पूरी तरह जीने का हक है,
हर संभावना को फलीभूत होने का हक है।

धरती पर आ रहा पानी का संकट,
सबको ही पानी बचाने का हक है।

बढ़ रहा आदमियों, मशीनों का शोर,
भौरों, चिड़ियों को भी गुनगुनाने का हक है।

जो धरती को नुकसान न पहुँचाये,
हर एक को ऐसी आस्था अपनाने का हक है।

चारों ओर सुव्यवस्था बनी रहे इसीलिये सबको ही,
समय व ऊर्जा पर थोड़ा जमाने का हक है।

सारी सीमाएं सीमित उद्देश्यों के लिए हैं,
बड़े लक्ष्य के लिए पार जाने का हक है।

तुम कहते हो फरिश्तों के साथ नहीं रह सकते,
लेकिन फरिश्तों को भी तो होने का हक है।

तुम कैसा भी करते रहो आचरण,
लोगों को भी तो आइना दिखाने का हक है।

❖❖❖

जीवन संवारो गुरूवर

विष्णु कुमार शर्मा

भटका बहुत हूँ जग में, हे पाप–ताप हारी,
जीवन सँवारो गुरुवर, आया शरण तुम्हारी।

अज्ञान से ग्रसित हूँ, माया ने मुझको घेरा,
अब रात है अंधेरी, कर दो सुखद सवेरा।
पापों से अब बचाओ, हे ज्ञान नेत्रधारी,
जीवन सँवारो गुरुवर, आया शरण तुम्हारी।।

मिलता है ज्ञान अमृत, जिस पर कृपा हो करते,
बनते हैं मूर्ख पंडित, असंभव को संभव करते।
झोली भर दो गुरुवर! आया शरण भिखारी,
जीवन सँवारो गुरुवर, आया शरण तुम्हारी।।

दाता तुम्हीं से जग को, सद्ज्ञान मिल सका है।
तुम से ही शिष्य मन का, श्रद्धा सुमन खिला है।
ब्रम्हा–विष्णु तुमही, तुम हो त्रिनेत्र धारी।।
जीवन सँवारो गुरुवर, आया शरण तुम्हारी।।3।।

अपना दुलार दे दो, अपनाओ प्यार दे दो।
अन्तःकरण हो निर्मल, खुशियों का हार दे दो।
गाऊँ तुम्हारे गुण ही, मर्जी हो यदि तुम्हारी।।
जीवन सँवारो गुरुवर, आया शरण तुम्हारी।।4।।

❖❖❖

सृजन स्मरण

ठाकुर प्रसाद सिंह

जन्म-1 दिसम्बर 1924, निधन- अक्टूबर 1994

कोयलें उदास मगर फिर–फिर वे गाएँगी
नए–नए चिन्हों से राहें भर जाएँगी
खुलने दो कलियों की ठिठुरी ये मुट्ठियाँ
माथे पर नई–नई सुबहें मुस्काएँगी
गगन–नयन फिर–फिर होंगे भरे
पात झरे, फिर–फिर होंगे हरे

सृजन स्मरण

गोपीकृष्ण गोपेश

जन्म- 11 नवम्बर 1925, निधन- 04 सितम्बर 1974

तुमको अगणित चिन्ताएँ हैं,
तुम दुनिया के चिन्तित मानव।
सह न सकोगे दुर्बल जर्जर,
मेरी अन्तर्ध्वनियों का रव।
अपना उजड़ा–सा घर देखो,
मेरा उजड़ा गाम न पूछो।
मुझसे मेरा नाम न पूछो,
तुमको अपनी सौ साधें है।
तुमको अपने सौ धन्धे हैं,
मेरी साधें शव हैं जिनको,
दूभर मिलने दो कन्धे हैं।
मत पूछो मैं क्यों आया हूँ,
काम बढ़ेगा ,काम न पूछो।
मुझसे मेरा नाम न पूछो ।।